खाकी

खोरी एक, हरामखोरी अनेक !

विकास नारायण राय

'वन भूमि से समझौता नहीं किया जा सकता।' सुप्रीम कोर्ट के इस घोषित निश्चय के चलते, दो महीने से अरावली वन क्षेत्र में शक्ल ले रही विस्थापन त्रासदी का लब्बोलुवाब रहा कि खोरी नामक श्रमिक बस्ती का अंत हो गया। लेकिन अवैध खोरी को आगाज से अंजाम तक पहुँचाने वाली माफिया हरामखोरी फलती-फूलती रहेगी।

3 अगस्त की सुप्रीम कोर्ट सुनवाई में जस्टिस ए एम खानविलकर की अध्यक्षता वाली दो जजों की पीठ ने खोरी के साथ अरावली के सम्बंधित वन क्षेत्र में बने तमाम रसूखदार निर्माण भी हटाने का अपना निर्देश पक्का कर दिया। इस बीच दिल्ली-फरीदाबाद सीमा के लकड़पुर और अनंगपुर गावों के रकबे में 3-4 दशक के काल खंड में अवैध रूप से बसे करीब एक लाख खोरीवासियों के बसेरों को ढहा दिया गया और उन्हें अनिश्चय के तूफान में उजड़ना पड़ा। तो भी, ये दो स्थितियां अरावली पहाड़ी में कानूनी समता का नहीं बल्कि कानून जनित विषमता का दृष्टांत बन गयी हैं। रसूखदार निर्माण की श्रेणी में सैकड़ों फार्म हाउसों के अलावा दर्जनों धार्मिक केंद्र, रिहायशी गगनचुंबी फ्लैट्स, भव्यतम होटल और विद्यालय/विश्वविद्यालय की आधुनिकतम इमारतें शामिल हैं, जिन्हें दशकों से विज्ञापित किया जाता रहा है। विशिष्ट तबकों की इस सरे आम वन-क्षेत्र डकैती की तुलना में खोरी बस्ती का 'ढंका' अस्तित्व इस संरक्षित क्षेत्र में गरीब की

समझना मुश्किल नहीं कि कैलाश सत्यार्थी के अभियान की सीमा क्या है?

सेंधमारी ही कहा जाएगा। सुप्रीम कोर्ट के दखल के बावजूद, हालाँकि, दोनों परिस्थितियों में असली अंतर यह नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट ने भी माना है कि दोनों ही तरह के निर्माण राजनीतिक संरक्षण और प्रशासनिक व भू-माफिया की मिलीभगत से अस्तित्व में आये हैं, लेकिन इसी समान दिखती तस्वीर में ही उनका असली अंतर भी छिपा हुआ मिलेगा। रसूखदार अपनी भरपाई को लेकर आशान्वित है जबकि गरीब को अपने विस्थापन की कीमत भी लाखों में चुकाने को कहा जा रहा है। रातों-रात उजाड़े गए खोरीवासियों के लिए पुनर्वास नीति की बात राज्य शासन और सुप्रीम कोर्ट दोनों कर रहे हैं, लेकिन इस कटु यथार्थ से मुंह चुराकर कि स्थानीय वन अतिक्रमण माफिया ही दरअसल राजकीय आशीर्वाद से अब उन्हें पुनर्वास के नाम पर भी दुहेगा।

खोरी प्रकरण से एक और बहुप्रचलित हरामखोरी का पर्दाफाश हुआ है। इसके 'नायक' हैं नोबेल विजेता कैलाश सत्यार्थी और उनका, खोरी से बमुश्किल 10-12 किलोमीटर दूर स्थित, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वित्त पोषित, एनजीओ 'बचपन बचाओ आन्दोलन'। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा खोरी पर जारी रिपोर्ट के अनुसार कोविड काल में हो रहे इस विस्थापन की चपेट में 10 हजार बच्चे भी आएंगे। पहले से महामारी की आर्थिक मंदी के मारे श्रमिक परिवारों के इन बच्चों को मानव तस्करी और यौन हिंसा का शिकार होने का खतरा रहेगा। ऐसे में, क्या यह सवाल नहीं बनता कि तथाकथित बाल अधिकार चैंपियन कैलाश सत्यार्थी को खोरी विस्थापन पर एक शब्द भी बोलते क्यों नहीं सुना गया?

विश्व मानव तस्करी रोधी दिवस के अवसर पर 29 जुलाई के 'द हिन्दू' अखबार में छपे अपने लेख में इस नोबेल विजेता ने भारत सरकार से एक सख्त मानव तस्करी रोधी बिल लाने की मांग की। यह बिल कानून बनने की प्रक्रिया में है भी लेकिन उसमें खोरी जैसे विस्थापनों या कोविड जैसी महामारी के प्रभाव से बच्चों को आर्थिक सुरक्षा कवच देने का प्रावधान नदारद है। सत्यार्थी की चिंता में भी यह पहलू नदारद है। उनका 'चलें हमारे साथ' अभियान 'साहस की पत्रकारिता' का दावा करने वाले प्रणव रॉय के एनडीटीवी के सहयोग से प्रचारित हो रहा है। इसमें यौन हिंसा के शिकार बच्चों को न्याय दिलाने का संकल्प गूंजता रहता है। इंगित बैंक खाते में कम से कम 2500 रुपये भेजकर कोई भी इस अभियान में कैलाश सत्यार्थी का हमराही हो सकता है।

दरअसल, 'चलें हमारे साथ' दिनों साझीदारों के लिए यश के गुब्बारे उड़ाने का एक जतन है। इसके लक्ष्य/आंकड़े/नतीजे कभी प्रचारित नहीं किये गए। केवल 5,000 लक्षित बच्चों में से अब तक मुश्किल से 2,000 बच्चों को टूटी-फूटी अतिरिक्त वकील सेवाएं पोक्सो अदालतों में प्रदान करायी गयी हैं, जबकि इस काम के लिए राज्य नियुक्त सरकारी वकील वहां पहले से ही होता है। इन बच्चों के जरूरी आर्थिक और शैक्षिक पुनर्वास के नाम पर अभियान में कोरा शब्दाडम्बर है और जमीन पर निल बटा सन्नाटा।

समझना मुश्किल नहीं कि कैलाश सत्यार्थी के अभियान की सीमा क्या है? जब वे एनडीटीवी के मंच से 'चलो हमारे साथ' का नारा देते हैं तो उन्हें हर हाल में सरकार के साथ ही चलना होता है। आश्चर्य क्या कि खोरी विस्थापन प्रकरण में न उन्हें पोक्सो के भावी बाल-शिकार नजर आयेंगे और न इस अंदेशे पर उनकी जुबान खुलेगी।

3 अगस्त को जब सुप्रीम कोर्ट खोरी विस्थापन-पुनर्वास पर सुनवाई कर रहा था तो मीडिया की मुख्य खबर थी राष्ट्रीय सरकार के मुखिया का टोक्यो ओलिंपिक में भारत का हॉकी मैच देखते हुए ट्वीट करना और राष्ट्रीय विपक्ष का लोकतंत्र बचाने के नाम पर संसद तक साइकिल मार्च निकालना। सुप्रीम कोर्ट में खोरी की अगली सुनवाई 25 अगस्त को है। इस बीच हरियाणा सरकार के पास अतिक्रमण हटाने के नाम पर कुछ और आंकड़े जुट जायेंगे। लेकिन, खोरी की हार और हरामखोरी की जीत में कोई शक नहीं रहना चाहिए!

(पूर्व डायरेक्टर, नेशनल पुलिस अकादमी, हैदराबाद)

राहुल बुलाएं या ममता, क्यों नहीं आती हैं मायावती

क़ुबूल अहमद

मोदी सरकार को संसद से लेकर सड़क तक घेरने के लिए विपक्ष को एकजुट करने की कोशिशें तेज हो गई हैं। पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने हाल ही में दिल्ली दौरे पर सोनिया गांधी और शरद पवार सहित तमाम विपक्षी दलों के नेताओं के साथ मुलाकात कर उन्हें मोदी सरकार के खिलाफ एक साथ आने की गुहार लगाई। वहीं, कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष राहुल गांधी भी इन दिनों विपक्षी दल के नेताओं को मोदी के खिलाफ एक मंच पर लाने में जुटे हैं। बीजेपी विरोधी ज्यादातर दल इसमें ममता और राहुल के साथ भी खड़े दिखाई दे रहे है, लेकिन बसपा प्रमुख मायावती इस विपक्षी एकजुटता से दूरी बनाए हुए हैं।

राहुल की बैठक में बसपा नहीं हुई शामिल

राहुल गांधी ने मंगलवार को दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में विपक्षी दलों को नाश्ते पर बुलाया। ये राहुल की विपक्षी दलों को पेगासस जासूसी मामले और कृषि कानूनों के मुद्दे पर एकजुट करने की कोशिश है। टीएमसी, एनसीपी, सपा, आरजेडी, लेफ्ट पार्टियां, इंडियन मुस्लिम लीग, आरएसपी सहित 15 दलों के नेता इसमें शामिल भी हुए। इससे पहले राहुल गांधी ने 14 विपक्षी दलों के नेताओं के साथ प्रेस को संबोधित किया था और मोदी सरकार को घेरा था।

इससे पहले, पश्चिम बंगाल की चुनावी जंग फतह करने के बाद तीसरी बार मुख्यमंत्री बनीं ममता बनर्जी भी दिल्ली आईं तो अपने पांच दिवसीय दौरे पर सोनिया गांधी और राहुल गांधी से लेकर शरद पवार, अरविंद केजरीवाल, संजय राउत सहित तमाम विपक्षी नेताओं के साथ मुलाकात की।

ममता ने कहा था कि बीमारी का इलाज जल्दी शुरू करना होगा, नहीं तो देर हो जाएगी। बीजेपी मजबूत पार्टी है। ऐसे में कांग्रेस को क्षेत्रीय दलों पर भरोसा करना होगा और क्षेत्रीय दलों को कांग्रेस पर। हालांकि दिलचस्प बात ये है कि मायावती विपक्ष के इन दोनों ही नेताओं की कवायद से दूरी बनाए हुए हैं।

विपक्षी नेताओं के मंच से मायावती की दूरी

2018 में कर्नाटक में जेडीएस-कांग्रेस गठबंधन की सरकार के शपथ समारोह में शामिल होने के बाद से बसपा प्रमुख मायावती विपक्षी एकजुटता के किसी भी मंच पर नजर नहीं आईं। फिर चाहे कांग्रेस की तरफ से विपक्षी एकता की कवायद हुई हो या फिर किसी अन्य क्षेत्रीय दल के द्वारा। सीएए-

एनआरसी के मुद्दे पर कांग्रेस ने विपक्षी दल के साथ बैठक की थी, जिसमें बसपा ने शामिल होने से इनकार कर दिया था।

माना जाता है कि मायावती विपक्षी एकता दलों के साथ खड़ी होकर प्रधानमंत्री पद की खुद की दावेदारी को पीछे धकेलना नहीं चाहती। मायावती अपनी सियासत को दोबारा से परवान चढ़ाने की कवायद में है। वे देश की पहली दलित प्रधानमंत्री और दूसरी महिला प्रधानमंत्री के सपने को भरपूर हवा देना चाहती हैं, लेकिन उससे पहले वो यूपी में अपने खोए हुए सियासी जनाधार को वापस पाने की कवायद में है।इसीलिए यूपी से लेकर पंजाब तक उन्होंने सियासी बिसात बिछा रखी है।

मायावती की एकला चलो नीति

दिल्ली की सत्ता का रास्ता वाया यूपी होकर ही जाता है। अगले साल फरवरी में यूपी, पंजाब, उत्तराखंड सहित पांच राज्यों में विधानसभा चुनाव होने हैं। ऐसे मे मायावती इन दिनों यूपी के चुनाव की तैयारियों में जुटी हैं और लखनऊ में डेरा जमा रखा है। मायावती ने साफ कर दिया है कि यूपी में किसी भी दल के साथ वो गठबंधन कर चुनावी मैदान में नहीं उतरेंगी बल्कि अपने दम पर चुनाव लड़ेंगी। बसपा ने ब्राह्मण सम्मेलन के जरिए चुनावी बिगुल फूंक दिया है तो पंजाब में कांग्रेस के खिलाफ अकाली दल के साथ हाथ मिला रखा है।

मायावती पेगासस और किसान दोनों ही मुद्दों पर बीजेपी को तो घेर रही हैं, लेकिन विपक्षी दलों के साथ खड़ी होकर किसी तरह का कोई सियासी संदेश देने से बच रही हैं। ऐसे में न तो खुद मायावती किसी विपक्षी दल की बैठक में शामिल हो रहीं है और नहीं उनके मजबूत सिपहसालार माने जाने वाले पार्टी महासचिव सतीष चंद्र मिश्रा।मायावती के निशाने पर बीजेपी और कांग्रेस दोनों ही दल हैं।

राहुल और ममता के द्वारा भले ही विपक्ष एकता का दम भरा जा रहा हों, लेकिन मायावती बड़ी सावधानी के साथ अपनी राजनीति को आगे बढ़ा रही हैं। विपक्ष के सभी नेता एक दूसरे से एकता मिलाकर अपने दावेदारी को धीरे-धीरे आगे बढ़ाने और खुद को सबसे बड़ा नेता साबित करने की रणनीति पर काम कर रहे हैं, लेकिन मायावती भी चतुर राजनीतिज्ञ मानी जाती हैं।ऐसे में वो किसी भी विपक्षी दल की लीडरशिप स्वीकार नहीं करना चाहतीं।

बसपा को दलित वोट छिटकने का डर

मायावती और कांग्रेस के बीच बनी सियासी दूरी को बढ़ाने में मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ विधानसभा चुनाव की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन दोनों राज्यों में कांग्रेस की तरफ से बसपा के साथ गठबंधन की खबरों के चर्चा में आने के बाद एकबारगी लगा था कि यूपी के अलावा भी दोनों दल साथ आ सकते हैं।

लेकिन बसपा की ज्यादा सीटों की मांग ने गठबंधन नहीं होने दिया। इतना ही नहीं राजस्थान में बसपा विधायकों को कांग्रेस में मिला लेने से भी मायावती खासा नाराज है, जिसके लिए वे कोर्ट भी गई थी। बसपा की सियासत को करीब से देखने वाले वरिष्ठ पत्रकार सैय्यद कासिम कहते हैं कि कांग्रेस के साथ खुलकर न आने के पीछे मायावती के अपने सियासी कारण हैं। उत्तर प्रदेश बसपा का गढ़ है। दलित समुदाय एक समय कांग्रेस का परंपरागत वोटर रहा है, लेकिन बसपा के राजनीतिक उदय के बाद दलित वोटर कांग्रेस से छिटक गए। ऐसे में मायावती को लगता है कि कांग्रेस के साथ खड़े होने पर उनका दलित वोटर कहीं छिटक न जाए। इसीलिए मायावती अक्सर अपने भाषणों में कहा करती हैं कि भाजपा-कांग्रेस की नीतियां और विचारधारा, वंचितों के खिलाफ हैं।इस तरह से मायावती कांग्रेस ही नहीं बल्कि बीजेपी से भी दूरी बनाकर रहती हैं। लेखक शायद यह बताना भूल गये कि मायावती को बांधे रखने के लिए भाजपा के पास सीबीआई व ईडी है।

किसान आंदोलन क्यों, जवाब शिमला में है

नीति वशिष्ठ

किसान आंदोलन क्यों कर रहे हैं, यह समझने के लिए शिमला जाइए। शिमला में सेब के बाग है और किसानों से छोटे छोटे व्यापारी सेब ख़रीदकर देश भर में भेजते थे। व्यापारियों के छोटे छोटे गोदाम थे। अडानी की नज़र इस कारोबार पर पड़ी। हिमाचल प्रदेश में भाजपा की सरकार है तो अडानी को वहाँ ज़मीन लेने और बाक़ी काग़ज़ी कार्यवाही में कोई दिक्क़त नहीं आयी। अडानी ने वहाँ पर बड़े बड़े गोदाम बनाए जो व्यापारियों के गोदाम से हज़ारों गुना बड़े थे। किसान आंदोलन क्यों कर रहे हैं, यह समझने के लिए शिमला जाइए।

अब अडानी ने सेब ख़रीदना शुरू किया, छोटे व्यापारी जो सेब किसानों से 20 रुपये किलो के भाव से ख़रीदते थे, अडानी ने वो सेब 22 रुपये किलो ख़रीदा। अगले साल अडानी ने रेट बढ़ाकर 23 रुपये किलो कर दिया। अब छोटे व्यापारी वहाँ ख़त्म हो गए, अडानी से प्रतियोगिता करना किसी के बस का नहीं था। जब वहाँ अडानी का एकाधिकार हो गया तो तीसरे साल अडानी ने सेब का भाव 6 रुपय किलो कर दिया।

अब छोटा व्यापारी वहाँ बचा नहीं था, किसान की मजबूरी थी कि वो अडानी को 6 रुपये किलो में सेब बेचे। अब अडानी किसान से 6 रुपये किलो सेब ख़रीदता है और उस पर एक-दो पैसे का अडानी लिखा स्टिकर चिपका कर 100 रुपये किलो बेच रहा है। बताइए क्या अडानी ने वो सेब उगाए?

टेलिकॉम इंडस्ट्री की मिसाल भी आपके सामने हैं। कांग्रेस की सरकार में 25 से ज़्यादा मोबाइल सर्विस प्रवाइडर थे। जियो ने शुरू के दो-तीन साल फ़्री कॉलिंग, फ़्री डेटा देकर सबको समाप्त कर दिया।

आज केवल तीन सर्विस प्रवाइडर ही बचे हैं और बाक़ी दो भी अंतिम साँसे गिन रहे हैं। अब जियो ने रेट बढ़ा दिए। रिचार्ज पर महीना 24 दिन का कर दिया। पहले आपको फ़्री और सस्ते की लत लगवाई अब जियो अच्छे से आपकी जेब काट रहा है। कृषि बिल अगर लागू हो गया तो गेहूँ, चावल और दूसरे कृषि उत्पाद का भी यही होगा। पहले दाम घटाकर वो छोटे व्यापारियों को ख़त्म करेंगे और फिर मनमज़ी रेट पर किसान की उपज ख़रीदेंगे। जब उपज केवल अडानी जैसे लोगों के पास ही होगी तो मार्केट में इनका एकाधिकार और वर्चस्व होगा और बेचेंगे भी यह अपने रेट पर। अभी भी वक्त है, जाग जाइए, किसान केवल अपनी नहीं आपकी और देश के 100 करोड़ से अधिक मध्यमवर्गीय परिवारों की भी लड़ाई लड़ रहा है।